ISSN : 2229-5550

नाट्यम् 89-90

अप्रैल-सितम्बर, 2019

विशाखदत्त विशेषाङ्क

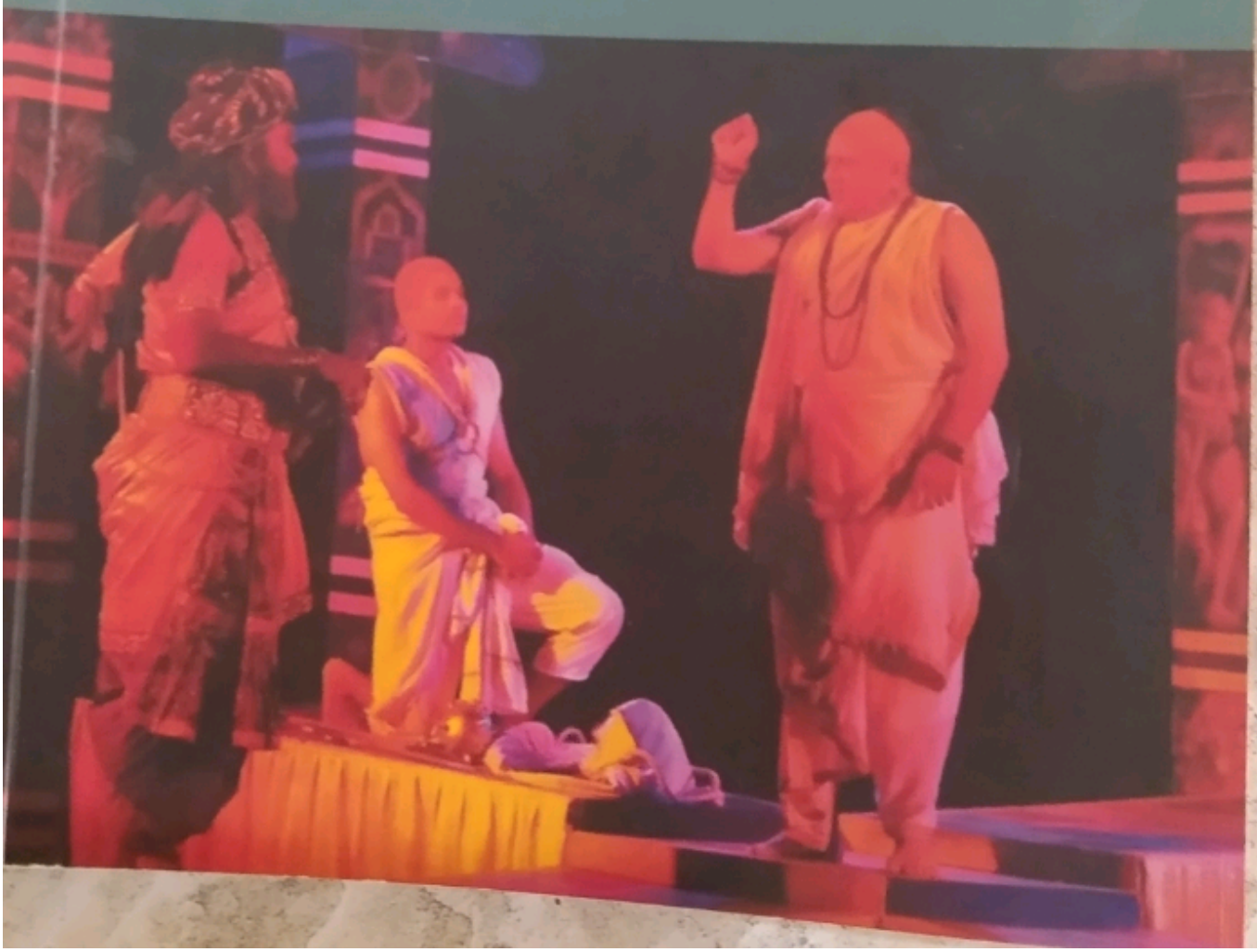

अनुक्रम

1. **विशाखदत्त : परिचय और रचनाएँ** 9
   राधावल्लभ त्रिपाठी
2. **मुद्राराक्षस में स्त्री, जन और प्रकृति** 15
   आनन्दप्रकाश त्रिपाठी
3. **विशाखदत्त का पाण्डित्य** 27
   मिश्रीलाल
4. **मुद्राराक्षस का राजनीतिक परिदृश्य** 32
   सन्दीप कुमार यादव
5. **राजधर्म और कूटनीति के निकष पर मुद्राराक्षस** 44
   सञ्जय कुमार
6. **मुद्राराक्षस में राष्ट्रियभावना** 59
   किरण आर्या
7. **मुद्राराक्षस में सूच्य-कथांश का प्रतिपादन** 64
   घूमनसिंह
8. **मुद्राराक्षस : नाट्यप्रयोग के संदर्भ में** 80
   राधावल्लभ त्रिपाठी
9. **मुद्राराक्षस की नाट्यशास्त्रीय समीक्षा** 85
   शुकदेव भोई
10. **मुद्राराक्षस में आयुर्वेदीय सुभाषित** 90
    गोपाललाल मीना
11. **मुद्राराक्षस का रसास्वाद** 96
    रामहेत गौतम

6

मुद्राराक्षस में राष्ट्रियभावना

किरण आर्या

विशाखादत्त संस्कृत के नाटयजगत् में उभरते हुये वे देदीप्यमान भास्कर हैं, जिन्होंने भारतीय नाटय परम्परा से हटकर अपना मार्ग स्वयं बनाया है उनके लिखे तीन नाटकों का उल्लेख मिलता है- देवीचन्द्रगुप्तम्, अभिसारिकवञ्चितकम्, मुद्राराक्षसम्। जिनमें मुद्राराक्षस ही पूरा उपलब्ध होता है। तीनों में से कोई भी संस्कृत नाटयपरम्परा के अनुरूप मिथकीय प्रसंग पर या मिथकीय चरित्र को लेकर नहीं लिखा गया अपितु तीनों ऐतिहासिक घटनाक्रम पर आधारित है और उदात्त राष्ट्रीय भावना को पुष्ट करते हैं।

नाटक में जहाँ एक ओर पाटलीपुत्र का शक्तिशाली शासक नन्द का, राक्षस नामक ब्राह्मण विश्वसनीय नीतिपटु स्वामिभक्त व राज्यभक्त अमात्य है जो नन्द वंश के समाप्त हो जाने पर राज्य के प्रति अपनी निष्ठा, भक्ति, भावना का परिचय देते हुए नन्दराज्य को पुनः प्राप्त करने का पूरे बुद्धि, बल से प्रयास करता है अर्थात् वेदवाक्य "माता भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्या" (अथर्व.) के भाव को अपने हृदय में धारण कर उस भूमिमाता की प्राप्ति हेतु पुत्रकर्त्तव्य का यथाशक्ति पालन करता है। राक्षस अमात्य के इसी प्रज्ञा, विक्रम व राष्ट्रभक्ति, राज्यभक्ति से उसका विरोधी चाणक्य भी अत्यन्त प्रभावित है।

वहीं दूसरी ओर पाटलीपुत्र में नन्द वंश विनाश के अनन्तर चन्द्रगुप्त के शासक होने पर, चन्द्रगुप्त का राज्य चिरस्थायी रहे इसके लिये कटिबद्ध चन्द्रगुप्त का अमात्य चाणक्य भी अपनी राज्यभक्ति का परिचय देते हुये निरन्तर प्रयत्नशील है कि कैसे पाटलीपुत्र सुरक्षित रहे, इसके लिये वह विरोधी राक्षस के गुणों से प्रभावित होता हुआ पाटलीपुत्र के चिरस्थायित्व के लिये राक्षक को चन्द्रगुप्त का अमात्य बनाना चाहता है।

मुद्राराक्षस के दोनों ऐतिहासिक पात्रों ने अपने समय में देशभक्ति का परिचय देते हुये देश के प्रति महती भूमिका अदा की है। चन्द्रगुप्त मौर्य वह शासक है जिसके अमात्य ने साम्राज्य को सुसंगठित और सुशासित बनाने के लिये, उसे योगक्षेम से पूर्ण करने के लिये भगीरथ प्रयत्न किया। भारत के तत्समय का चित्र एक राष्ट्र और एक अविच्छिन्न प्राचीन संस्कृति के रूप में चाणक्य के बिना अपूर्ण दिखायी देता है। चाणक्य वह शक्ति है, वह अदभुत् राज्य भक्ति के रूप में है जो राजकीय पद के गौरव से, राजकीय ऐश्वर्य सुख सुविधा से सर्वथा दूर, पारिवारिकता से दूर निरन्तर सम्पूर्ण जीवन विशाल भूभाग की सुरक्षा लक्ष्य के लिये मनसा वाचा कर्मणा से जूझती रही, यह राष्ट्रभक्ति का अद्भुत उदाहरण है।

नाटक के प्रारम्भ से ही हम देखते हैं कि चाणक्य अपने राज्य के सुरक्षा के प्रति इतना सजग है कि सूत्रधार और नटी जब परस्पर चन्द्रग्रहण के विषय में बात कर रहे हैं तो चन्द्रग्रहण, चन्द्रगुप्त में चन्द्र शब्द के सामान्य से चाणक्य, चन्द्रगुप्त मौर्य पर (अर्थात् पाटलीपुत्र, कुसुमपुर पर) शत्रु का आक्रमण होने वाला है ऐसा समझ रहा है और क्रोधित होता हुआ कहता है -

'आः क एष मयि स्थिते चन्द्रगुप्तमभिभवितुमिच्छति'[1]

'अरे! यह कौन है?' जो मेरे रहते हुये चन्द्रगुप्त को पराजित करना चाहता है, वाक्य से स्पष्ट है कि चन्द्रगुप्त की पराजय, राज्य की पराजय है जिसके संरक्षण के लिये चाणक्य अहर्निश तत्पर एवं चौकन्ना वाला है। विशाखदत्त के शब्दों में -

उल्लंघयन् मम समुज्ज्वलतः प्रतापं कोपस्य नन्दकुलानन धूमकेतोः।
सद्यः परात्मपरिमाण विवेकमूढः कः शालभेन विधिना लभतां विनाशम्।।[2]

अर्थात् चाणक्य क्रोधित होकर कहता है कि अपनी और दूसरे की शक्ति का विवेचन करने वाला अथवा अन्तर करने वाला कौन मूर्ख है जो नन्दवंशरूपी जंगल के लिये अग्नि के समान मेरे भड़कते हुए क्रोध के तेज का उल्लंघन करते हुये पतंगे के समान तुरन्त विनाश को प्राप्त करना चाहता है अर्थात् यदि कोई सामना करने का प्रयत्न करेगा तो तुरन्त वैसे ही नष्ट हो जायेगा जैसे एक पतंगा अपनी और दीपक की शिखा की शक्ति में अन्तर न कर पाने के कारण दीपक की लौ से टकराकर तुरन्त नष्ट हो जाता है।

चाणक्य निःस्वार्थ भाव से राज्य की सुरक्षा में तत्पर है वह चाहता तो स्वयं नन्दवंश को नष्ट करने के बाद वह स्वयं उस राज्यलक्ष्मी को प्राप्त कर सकता

था पर उसने उस राज्यलक्ष्मी को अपने मित्र चन्द्रगुप्त को प्राप्त करवा दी। यह चाणक्य की निःस्वार्थ राज्यभक्ति राष्ट्रभावना का जवलन्त उदाहरण है -

"फलं कोपप्रीत्योर्द्विषति च विभक्तं सुहृदि च"[3]

विशाखदत्त कहते हैं मुद्राराक्षस में -

स्तुवन्ति श्रान्तास्याः क्षितिपतिमभूतैरपि गुणैः,
प्रवाचः कार्यव्याद्यदवितथावाचोऽपि पुरुषाः।
प्रभावस्तृष्णायाः स खलु सकलः स्यादितरथा,
निरीहाणामीशस्तृणमिव तिरस्कार विषयः।।[4]

अर्थात् सत्यवादी मनुष्य भी स्वार्थपूर्ति के लिये राजा की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं, जो राजा में विद्यमान नहीं है ऐसे गुणों का भी बढ़ा चढ़ाकर बखान करते हैं। इसके विपरीत वीतरागी के लिये राजा अन्य के समान साधारण मनुष्य ही होता है। चाणक्य एक ऐसा ही वीतरागी राष्ट्रभक्त है जिसके पास राज्य सुरक्षा के अतिरिक्त कोई स्वार्थ नहीं है। उसे किसी ऐश्वर्य की कोई चाह नहीं है। वह "सादा जीवन उच्च विचार" के राष्ट्रीय आदर्श का परिपालक है -

उपलशकलमेतद् भेदकं गोमयानां बटुभिरूपहृत्तानां बर्हिषां स्तूपमेतत्।
शरणमपि समिदिभः शूष्यमाणाभिराभिः विनमित पटलान्तं दृश्यते जीर्णकुड्यम्।।[5]

आचार्य चाणक्य के उच्चता को यहां प्रदर्शित किया गया है कि वे जिस जीर्ण कुटिया में रहते हैं वहां कहीं गोबर के उपलों को तोड़ने वाला पत्थर है तो कहीं शिष्यों द्वारा लायी गयी कुशा का ढेर है तथा घर इतना जीर्ण शीर्ण है कि इसके छत के किनारे समिधाओं के भार से झुक गए हैं और दीवारें भी टूटी फूटी हैं। चाणक्य चाहते तो ऐशो आराम की जिन्दगी व्यतीत कर सकते थे परन्तु वे वीतराग होने के साथ सादे जीवन में विश्वास रखते हैं। यह चाणक्य जैसे विरले निःस्पृह लोगों पर ही लागू हो सकता है देशप्रेमी बनने या दिखने का हर महत्वाकांक्षी इसका दावा नहीं कर सकता। एक ओर गरीब के विकास की बात करना दूसरी ओर दस लाख के कपड़े पहनना-कहाँ की राष्ट्रीयता है। अपने ही स्वभाव के अनुरूप चाणक्य, राक्षस (प्रतिनायक) में भी इन्हीं गुणों को देखता है और राक्षस की नन्दों के प्रति निःस्वार्थ भक्ति की प्रशंसा करते हुये कहता है -

ऐश्वर्या दनपेतमीश्वरमयं लोकोऽर्थतः सेवते,
तं गच्छन्त्यनु ये विपत्तिषु पुनस्ते तत्प्रतिष्ठाशया।
भर्तुर्ये प्रलयेऽपि पूर्वसुकृतासंगेन निःसङ्गया,
भक्त्या कार्यधुरां वहन्ति कृतिनस्ते दुर्लभास्त्वादृशाः।।[6]

अर्थात् इस संसार में सेवक प्रायः स्वामी की सेवा तब तक ही करते हैं जब तक उसके पास धन होता है। कुछ सेवक अपने स्वामी का विपत्ति में भी साथ देते हैं क्योंकि उन्हें यह आशा रहती है कि सम्भवतः उनके स्वामी की पुनः पदप्रतिष्ठा हो जाये और इसका लाभ उन्हें भी प्राप्त हो। परन्तु राक्षस जैसे कृतज्ञ सेवक इस संसार में मिलने दुर्लभ हैं जो अपने स्वामी की मृत्यु हो जाने पर भी उनके द्वारा अपने प्रति किये गये उपकारों को याद करके उनके कार्यभार को निःस्वार्थ भक्ति भावना से वहन करते हैं।

राक्षस भी चन्द्रगुप्त से नन्दों का राज्य अपने लिये नहीं अपितु स्वर्गगत अपने स्वामी की आत्मा को प्रसन्न करने के लिये वापस लेना चाहता है।[7]

चाणक्य के अनुसार जिस सेवक में प्रज्ञा, विक्रम, भक्ति तीनों गुण एक साथ पाये जाते हैं वही राजा के ऐश्वर्य का कारण बनता है। इनमें से एक भी गुण का यदि अभाव है तो वह राजा की अवनति का कारण हो सकता है तथा राजा की कीर्ति को विस्तीर्ण होने में बाधक बनता है। अतः गुणत्रय से युक्त राक्षस चन्द्रगुप्त का यदि अमात्यपद स्वीकार कर ले तो चन्द्रगुप्त का राज्य चिरस्थायी होकर अपनी विशालता को प्राप्त कर सकता है। ऐसा चाणक्य विचारता है।

वर्तमान काल में जिस स्वार्थ व उच्चाकांक्षा और जिजीविषा से ओतप्रोत, देश में कार्यप्रणाली प्रचलित है उन सभी को चाणक्य एवं राक्षस से यह सीख लेनी चाहिये कि स्वामीभक्ति व राष्ट्रभक्ति केवल स्वामी के रहते या स्वकार्य सिद्धि तक सीमित नहीं होनी चाहिये अपितु उनके न रहने पर भी राष्ट्र की चिन्ता उसकी समृद्धि और वैभव की चिन्ता सम्पूर्ण जीवन का दायित्व होना चाहिये।

इस प्रकार अमोघ निष्ठा एवं विरल प्रशासनिक गुणों वाले राक्षस की सेवाओं से राष्ट्र वञ्चित न रह जाये इसलिये राक्षस को अपने बुद्धि प्रयोग द्वारा चाणक्य, चन्द्रगुप्त के और राष्ट्र के काम में उसे लगाना चाहता है जैसे बलशाली जंगली हाथी को बल से नहीं अपितु युक्ति से पकड़कर भार ढोने के काम में लगा दिया जाता है। इसी कठिन लक्ष्य की प्राप्ति के लिये घात-प्रतिघात का लम्बा सिलसिला चलता है और दोनों ओर के गुप्तचरों की विलक्षण टककर होती है वही नाटक की कथावस्तु है। अन्त में नायक-चाणक्य और प्रतिनायक राक्षस के मध्य विकट युद्ध समाप्त होता है तो एक उदात्त राष्ट्रीय और मानवीय लक्ष्य पूरा होता है और राक्षस की व्यक्तिगत स्वामीभक्ति किसी व्यापक लक्ष्य में डूबकर एकाकार हो

जाती है। यहाँ चाणक्य अपने बुद्धि कौशल से प्रतिद्वन्द्वी के सारे पंख काटने में सफल होता है और राक्षस के मानस प्रक्षालन हेतु उसकी पराजय को विजय में बदल देता है।

इस नाटक में हम देख सकते हैं कि चाणक्य में मनुष्य को पहचानने की अदभुत क्षमता है। शत्रु मित्र में भेददृष्टि न रखने वाली नजर है। सार्वभौम गुणग्राहकता है स्वार्थपरता का अत्यधिक अभाव है और अतिशय त्यागमय जीवनपद्धति है। इसीलिये वह इतने विशाल और अमेद्य संगठन को बनाने में सफल हुआ। और यही गुण प्रत्येक राष्ट्रनायक में होने चाहिये। राष्ट्रोन्नति के लिये सर्वगुणसम्पन्न अमात्य को लाने के लिये स्वयं के अमात्यपद को त्यागने की निर्मोहता दुर्लभ है, ऐसी राष्ट्रीय भावना का होना दुष्प्राप्य है। चाणक्य के चिन्तन केन्द्र में हमें पग-पग पर उनका अर्थशास्त्र दिखाई देता है वही जो अप्राप्त को प्राप्त कराती है, प्राप्त की रक्षा करती है, रक्षित की वृद्धि करती है और वृद्ध को समुचित कार्य में लगाती है।

'अलब्धलाभार्था लब्धपरिरक्षिणी, रक्षितवर्धिनी,
वृद्धस्य तीर्थेषु प्रतिपादनी च।'[8]

'तस्यामायत्ता लोकयात्रा'[9] इसी पर सम्पूर्ण संसार की यात्रा टिकी है। राष्ट्र निर्माण की यही प्रक्रिया है और रहेगी। जब भी भारत के सन्दर्भ में राष्ट्रनिर्माण का प्रसंग उठेगा हमें चाणक्य के व्यक्तित्व एवं कार्यप्रणाली की ओर मुड़कर देखना ही होगा। उनकी कुटिया में स्थित ऊर्जा का अवगाहन करना ही होगा तथा विशाखादत्त जी के साथ भी हम तभी न्याय कर पायेंगे जब राष्ट्रनिर्माण की प्रारम्भिक प्रक्रिया को समझ पायेंगे, जिसकी देश को वर्तमान में अत्यन्त आवश्यकता है। चाणक्य में मनुष्य को पहचानने की अद्भुत क्षमता है। शत्रु मित्र में भेददृष्टि न रखने वाली नजर है।

सन्दर्भ -

1. मुद्राराक्षस 1, पृ. 14, 2. वही 1.10, 3. वही 1.13, 4. वही 3.16, 5. वही 3.15, 6. वही 1.14, 7. वही 2.5, 8. कौटिल्य अर्थशास्त्र 1.3.2, 9. वही 1.3.3